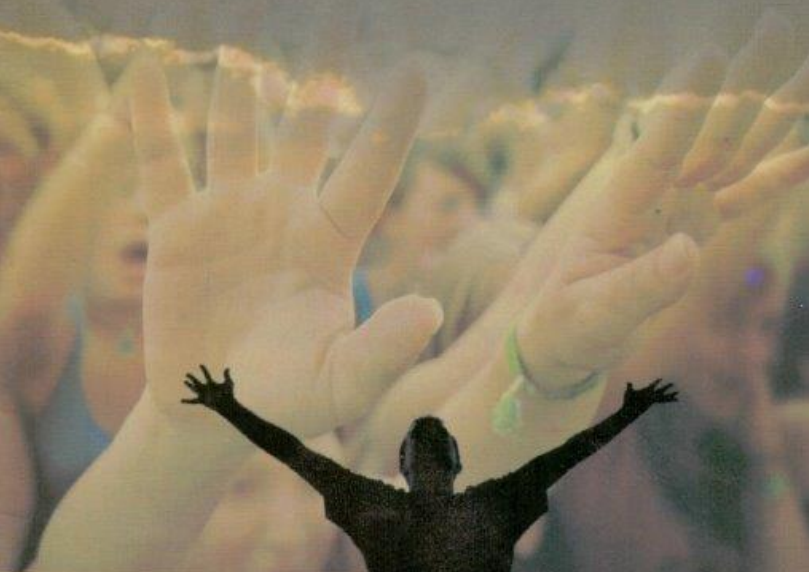




युग निर्माण में युवा शक्ति का सुनियोजन



युग निर्माण में युवा शक्ति का सुनियोजन



संकलन-सम्पादन
ब्रह्मवर्चस



प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)
गायत्री नगर, श्रीरामपुरम्-शांतिकुंज, हरिद्वार
(उत्तराखण्ड) पिन-249411



पुनरावृत्ति सन्-2013

मूल्य- 8/-

पूर्व निवेदन

युग निर्माण अभियान के अन्तर्गत युवाओं की गतिविधियाँ इन दिनों काफी तेजी से उभर रही हैं। युगऋषि की जन्म शताब्दी पर लाखों की संख्या में आदर्शनिष्ठ, राष्ट्र और मनुष्यता की शान बढ़ाने वाले युवाओं को युग देवता के श्रीचरणों में समर्पित करने का उत्साह भी जाग रहा है। यह बहुत ही शुभ संकेत है। इस दिशा में कार्य कर रहे सभी युवा तथा उनके प्रौढ़ मित्र इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं। फिर भी यह शुरुआत भर है, अभी निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बहुत सतर्कता तथा सक्रियता जरूरी है। स्पष्ट दृष्टि और सुनिश्चित कार्ययोजना इसके लिए बहुत जरूरी है।

युगऋषि की एक महत्त्वपूर्ण उक्ति है कि क्या करना है, इसके समझने के साथ यह भी समझो कि जो करना है, उसे अंजाम देने के लिए अपने व्यक्तित्व को कैसा बनाना जरूरी है। यदि इस सत्य को स्वीकार करके तदनुसार तैयारी नहीं की गई, तो चाहते हुए भी कुछ उल्लेखनीय कार्य कर पाना सम्भव नहीं होगा। इसलिए युवा वर्ग के लिए यह जरूरी है, उनके सामने स्पष्ट जीवनोद्देश्य हो और उसके लिए उपयुक्त-समर्थ व्यक्तित्व विकास की साधना तत्परतापूर्वक करें।

इस सन्दर्भ में बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है, फिर भी चर्चा में कई प्रश्नों और जिज्ञासाओं के समाधान के लिए आग्रह उभरते रहते हैं। उनका समाधान करने तथा गतिविधियों को अधिक प्रभावपूर्ण एवं गतिशील बनाने की दृष्टि से यह पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं।

चाहिए जीवन समग्र दृष्टि

युवा शक्ति नई पीढ़ी के सन्दर्भ में जब कोई चर्चा चलती है, तो एक तथ्य पर सभी का ध्यान जाता है। वह यह कि युवा पीढ़ी में ऊर्जा तो बहुत है; किन्तु दिशा सही नहीं बन पा रही है, भटकाव काफी है। भटकाव का मूल कारण होता है, सही मार्ग का पता न होना तथा ओछे प्रलोभनों से बचने योग्य विवेक और सत्साहस का अभाव। चिन्तन एकांगी होने से भटकाव स्वाभाविक है। इसलिए युवा वर्ग को जीवन के बारे में विज्ञान सम्मत समग्र दृष्टि का बोध कराया जाना जरूरी है।

जीवन विज्ञान, जीवन विद्या, जीवन जीने की कला के विशेषज्ञों (प्राचीन ऋषियों से लेकर आज के विचारकों तक) का यह मत है कि जीवन की वाञ्छित सफलता के लिए जरूरी है कि जीवन की सभी विभूतियों, उसके सभी अंगों का संतुलित उपयोग किया जाय। जीवन को एकांगी न रहने दिया जाय, उसे सर्वांगीण बनाया जाय। वर्तमान समय में ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकों के असाधारण विकास के बावजूद मनुष्य जिन समस्याओं- विडम्बनाओं से घिरा है। वह स्वस्थ, सुखी, संतुष्ट, शांतिमय जीवन की कामना करते हुए भी रोगों, कष्टों, तनाव, अवसाद, अशांति आदि से त्रस्त है, उसका कारण जीवन के एकांगीपन को ही माना जाता है।

जीवन को सही ढंग से जीने के लिए उसके कम से कम तीन आयामों को समझना तथा उनका परस्पर संतुलन बनाना जरूरी है। तीन मुख्य आयाम हैं- १. काया, २. विचार तथा ३. चेतना। इन तीनों के संयोग, सन्तुलित, समन्वय से ही हमारा जीवन स्वरूप लेता है।

इन तीनों के अपने-अपने विज्ञान हैं- १. शरीरविज्ञान, २. विचार विज्ञान या मनोविज्ञान और ३. चेतना विज्ञान अथवा अध्यात्म विज्ञान। इसलिए जीवन की समग्रता-सफलता के लिए व्यक्तित्व के तीनों आयामों और उनसे संबद्ध विज्ञान की धाराओं को समझना, उपयोग में लाना जरूरी है।

आजकल जीवन के सम्बन्ध में धारणा आमतौर से एकांगी हो गई है। काया और उसके सुखों को जरूरत से ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। उसे स्वस्थ रखने के मूल सिद्धान्तों की उपेक्षा की जा रही है। मन को भी स्वार्थनिष्ठ, सुखों तक ही सीमित रखा जा रहा है। चेतना विज्ञान पर तो विरले लोग ही थोड़ा-बहुत ध्यान दे पा रहे हैं। इस एकांगीपन के दोष को ठीक करना ही होगा।

बढ़ती सहमति : देव संस्कृति, भारतीय संस्कृति तो आदिकाल से ही इन तीनों पक्षों के संतुलन की पक्षधर रही है। पश्चिमी संस्कृति का विकास चूँकि पदार्थ विज्ञान के सहारे ही हुआ, इसलिए प्रारंभ में उसकी सोच एकांगी थी। पहले व्यक्तित्व (पर्सनालिटी) को केवल शारीरिक परिवेश तक ही माना जाता रहा। फिर उसमें संशोधन हुआ 'हैल्दी माइण्ड इन हैल्दी बॉडी' (स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मानस)। कुछ ही समय में अगला संशोधन करना पड़ा - 'हैल्दी माइण्ड इन हैल्दी बॉडी, विद हैल्दी स्पिरिट' स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मानस तथा स्वस्थ भावना।

इसी प्रकार विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) ने सकारात्मक स्वास्थ्य (पॉजिटिव हैल्थ) की परिभाषा में संशोधन किया। वर्तमान परिभाषा है- 'इट इज फिजिकल, मैण्टल, सोशल एण्ड स्पिरिचुअल वेल बीइंग' अर्थात् शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ होना।

आजकल मैनेजमेण्ट के कौशल को समाज के सभी क्षेत्रों में बहुत मान्यता प्राप्त है। आदर्श प्रबंधनों (आइडियल मैनेजमेण्ट) के सूत्रों पर शोध करते-करते विश्व के मूर्धन्यों को भी यह तथ्य स्वीकार करना पड़ा है कि आदर्श प्रबंधन के लिए आध्यात्मिक मूल्यों (स्पिरिचुअल वैल्यूज) को शामिल करना अनिवार्य है, लाजिमी है।

युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट रूप से लिखा और कहा है। सामान्य रूप से हमारे पास शक्ति की तीन मुख्य धाराएँ

हैं—भौतिक शक्ति, धन शक्ति तथा विचार शक्ति। इन शक्तियों को यदि भटकने से, गलत रास्ते पर जाने से रोकना हो, तो इन पर चेतना की शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति का नियंत्रण होना ही चाहिए। उसके अभाव में भौतिक शक्ति उद्धण्डता की ओर, धन शक्ति, व्यसनों की ओर तथा बौद्धिक शक्ति कुचक्रों—घोटालों की ओर बहक जाती है। इस दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना को आज खुली आँखों से विभिन्न क्षेत्रों में घटित होते देखा जा सकता है। जिन शक्तियों को मनुष्य ने मनुष्यता की प्रगति, सुख, संतोष, शान्ति, प्रेम, भाईचारे की कामना से विकसित किया था, वही शक्तियाँ ध्वंस, पतन, पीड़ा, असंतोष एवं वर्ग-विग्रह पैदा करने के माध्यम बन गई हैं।

समय पर चेतें - जाग्रत् शक्तियों के दुरुपयोग को रोककर उन्हें सदुपयोग के मार्ग पर लाने के लिए आध्यात्मिक ऊर्जा का उपयोग करना जरूरी है। युवा पीढ़ी को शक्ति का सबसे बड़ा भण्डार कहा जाय, तो इसे अतिशयोक्ति, बड़बोलापन नहीं कहा जायेगा। इस ऊर्जा भण्डार को सही दिशा में लगाना है, तो उसे आध्यात्मिक धारा से जोड़ना ही पड़ेगा।

“युवैव धर्मशील स्यात्” :- यह उपनिषद् का कथन है। इसका अर्थ है—‘युवा अवस्था में ही धर्मशील बनो।’ यहाँ धर्म का अर्थ किसी धार्मिक सम्प्रदाय से नहीं है। जीवन में आध्यात्मिक मानवोचित अनुशासन के प्रति प्रतिबद्ध होना धर्म कहा गया है। युवा अवस्था में जीवन ऊर्जा स्वाभाविक रूप से जाग्रत् और विकसित होती है। उसे उसी समय अनुशासन में बाँधना जरूरी है।

इतिहास बताता है कि अधिकांश महान व्यक्तियों ने युवा अवस्था में ही स्वयं को आध्यात्मिक अनुशासनों में बाँधा है। भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि; ऋषिगण वशिष्ठ, विश्वामित्र, श्रृंगी, आदि; महावीर बुद्ध, ईशदूत ईसा; हजरत मोहम्मद शंकराचार्य जैसे धर्म प्रवर्तक; सुभाषचन्द्र बोस, विस्मिल, अशफाक, आजाद-भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी सभी ने स्वयं को युवावस्था में ही आत्मानुशासनों में साधा है।

इसीलिए भारतीय संस्कृति में बालकों, किशोरों को आध्यात्मिक वातावरण में, गुरुकुलों आदि में रखने की व्यवस्था बनाई जाती थी। उनके अन्दर शक्ति-धाराओं को अनुशासित, सन्मार्गगामी बनाने का कौशल भी विकसित किया जाता था। युवा पीढ़ी के लिए आज उस प्रकार की (गुरुकुलों जैसी) व्यवस्था भले ही नहीं है, किन्तु उन्हें जीवन के आदर्शों को चुनने तथा उस दिशा में सधे हुए कदमों से बढ़ते रहने के कौशल की जरूरत आज भी उतनी ही है। इस जरूरत को हर हालात में पूरा किया ही जाना चाहिए।

युवाओं के लिए आज वैसा वातावरण कहाँ से लायें? इस प्रश्न का समाधान बहुत कठिन नहीं है। आज संचार संसाधनों (इन्फॉर्मेशन टेक्नालॉजी) के संतुलित उपयोग से कहीं भी इच्छित वातावरण बनाना संभव है।

समाधान क्या? युवाओं को जीवन को आध्यात्मिक अनुशासनों से जोड़ा जाना चाहिए, यह बात स्वीकार कर लेने पर उसे लागू करने के मार्ग में कठिनाइयाँ अनुभव होने लगती हैं। कई प्रश्न उठते हैं। क- पहल कौन करे? ख- प्रेरणा कहाँ से मिले, ग- परिस्थितियाँ अनुकूल कैसे बनें? आदि।

क- पहल- समझदार अभिभावकों को इस दिशा में पहल करनी चाहिए। शिक्षक गण भी इस क्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। संवेदनशील लोकसेवी कार्यकर्ताओं-संगठनों को इस कार्य को प्राथमिकता देनी चाहिए। वे युवाओं के प्रौढ़ मित्र, बुजुर्ग दोस्त बनकर प्रयास करें, तो बहुत अच्छे परिणाम पाये जा सकते हैं।

ख- प्रेरणा के अभाव की बात तो एक तरह से बहानेबाजी है। धार्मिक, आध्यात्मिक संगठनों संस्थानों की संख्या पर्याप्त है। स्वामी विवेकानंद, योगी श्री अरविन्द, संत विनोबा, युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य आदि द्वारा विकसित मार्गदर्शक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। फिर आजकल तो संचार तकनीक (इन्फॉर्मेशन टेक्नालॉजी) के संतुलित उपयोग से भी प्रेरणा एवं मार्गदर्शन पाने के अनेक स्रोत खोले जा सकते हैं? जब

गाँधी जी हरिश्चन्द्र के नाटक से ही पर्याप्त प्रेरणा ले सकते हैं तो आज के युवाओं के लिए इस दिशा में विशेष कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

ग- परिस्थितियों की अनुकूलता की शिकायत दुर्बल मनोभूमि वाले लोग ही किया करते हैं ? बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर, मीरा, लक्ष्मीबाई से लेकर स्वतंत्रता संग्राम के सत्याग्रहियों, क्रान्तिकारियों ने प्रतिकूल परिस्थितियों में ही अपनी प्रखर मनोभूमि के आधार पर राहें बनाई और कीर्तिमान स्थापित किए हैं। इसलिए वर्तमान समय में युवाओं को आध्यात्मिक अनुशासनों को जाग्रत् करने में विशेष कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

अध्यात्म कितना ? :- प्रश्न उठता है, युवा पीढ़ी को कितने और कैसे अध्यात्म की जरूरत है ? वे आध्यात्मिक साधनाओं में लग जायें, तो उनके कैरियर का क्या होगा ? उनके सांसारिक जीवन क्रम के उत्तरदायित्वों का, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं का क्या होगा ?

इसका उत्तर सहज है। इस प्रकार के संदेह इसलिए उभरते हैं कि जीवन की समग्रता की दृष्टि तथा व्यावहारिक अध्यात्म का स्वरूप साफ नहीं है। इस बात को कुछ लौकिक उदाहरणों से समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए खेल या संगीत को लें-

कुछ खिलाड़ी या संगीत-साधक ऐसे होते हैं, जो उन्हें अपने जीवन का मुख्य कैरियर बना लेते हैं। उन्हें खेल या संगीत के लिए अपना अधिकांश समय, शक्ति, साधन लगाने पड़ते हैं। इससे कम में उनका काम नहीं चलता। ऐसे व्यक्ति या साधक बहुत थोड़े होते हैं। उन तक ही खेल या संगीत सीमित नहीं रहता। बड़ी संख्या में आम जीवन जीने वाले नर-नारी अपने स्वास्थ्य संतुलन, मनोरंजन एवं मन की शांति के अपनी आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार खेल या संगीत को अपनाते हैं। इससे उनके लौकिक जीवन की कार्य क्षमता घटती नहीं, बढ़ती ही है।

इसी प्रकार कुछ साधक ऐसे होते हैं, जो अध्यात्म को ही कैरियर बना लेते हैं। वे उस क्षेत्र के विशेषज्ञ भले कहे जाते हैं, किन्तु अध्यात्म उन्हीं तक

सीमित नहीं रहता। सामान्य सांसारिक जिम्मेदारियाँ सँभालने वाले नर-नारी भी अपने जीवन में उत्कृष्टता, संतुलन लाने के लिए अपनी-अपनी आवश्यकता एवं रुचि के अनुरूप अध्यात्म का उपयोग करते हैं। उन्हें गुफा या आरण्यक-आश्रमों वाला अध्यात्म नहीं, गृहस्थाश्रम वाले अध्यात्म की जरूरत होती है। उसके संयोग से उनकी कार्यक्षमता घटती नहीं, बढ़ती ही है। उन्हें लौकिक कौशल के साथ जीवन में संतोष, शांति के समावेश का कौशल भी मिलता है।

युवा वर्ग को इसी व्यावहारिक अध्यात्म की जरूरत है। उसकी इतनी मात्रा तो चाहिए ही, जो उनके अंदर मानवीय या दैवी क्षमताओं को उभार सके, उनकी जाग्रत् या संचित शक्तियों को भटकाव से रोककर उन्हें सही उद्देश्यों में लगा सके। वे लौकिक सम्पन्नता एवं समृद्धि के साथ आन्तरिक शान्ति, संतोष एवं आनन्द का भी लाभ प्राप्त कर सकें। युगऋषि ने उसके लिए बड़े सहज तथा व्यावहारिक सूत्र सुझाये हैं। उन्हें प्रतिदिन घण्टे-दो घण्टे समय तथा थोड़े से संसाधन लगाकर अपनाया और साधा जा सकता है। उनके प्रभाव से शक्तियों को आतंक, व्यसन तथा कुचक्रों में भटकने से रोककर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के लिए हितकारी धाराओं में नियोजित किया जा सकता है।

उच्च दक्षता वाला (कैरियर) -

युवावर्ग के सामने अपने जीवन निर्वाह का प्रश्न बड़ा मुँह फैलाकर खड़ा दिखाई देता है। इस प्रश्न को हल करने के लिए पहले थोड़ी-सी जरूरत विचार क्रांति के सूत्रों की, जीवन की परिभाषा को विवेक सम्मत बनाने की होगी।

कैरियर का अर्थ - १. स्थूल सन्दर्भ में साधन-सामग्री को इच्छित स्थान तक पहुँचाने, ढोने वाले साधन को कैरियर कहते हैं। यह कैरियर ढोई जाने वाली वस्तु, सामग्री के स्वरूप और उसकी मात्रा के अनुरूप बनाना होता है। २. जीवन अथवा जीवन वृत्ति को भी कैरियर कहा जाता है। इस

परिभाषा के अनुसार उसे जीवन लक्ष्य जीवनोद्देश्य, जीवन के आदर्शों के अनुरूप बनाया जाता है।

लाइफ कैरियर (जीवन निर्वहन) के सन्दर्भ में भी यही सूत्र लागू होते हैं। शानदार या बड़ा कैरियर बनायें, लेकिन उसमें ढोना क्या है? अथवा जीवन का उद्देश्य क्या है? यह समझे बिना ही कैरियर की अनगढ़ दौड़ में युवा शक्ति दौड़ी जा रही है।

एक सामान्य उद्देश्य तो सभी के सामने होता है, अपने तथा अपने आश्रितों के निर्वाह की व्यवस्था। उनके लिए सुख, सुविधाएँ जुटाना। जो मात्र इतने की व्यवस्था बनाता है, वह सामान्य कैरियर वाला ही कहा जायेगा।

कुछ श्रेष्ठ व्यक्ति अपने तथा अपने आश्रितों के जीवन निर्वाह के साथ-साथ कुछ श्रेष्ठ आदर्शों, समाज, राष्ट्र एवं मनुष्यता के हित साधने के निर्वाह की भी जिम्मेदारी अनुभव करते तथा उन्हें निभाते भी हैं। जो लोग ऐसा कुछ कर पाते हैं, उनके कैरियर को ही शानदार कहा जा सकता है।

आज की समस्या यही है कि अधिकांश युवाओं के सामने अपने-अपने परिवार की सुख सुविधाओं के निर्वाह के अलावा और कोई लक्ष्य नहीं दिखता। ऐसे सीमित स्वार्थों तक सीमित व्यक्तियों के कैरियर को विशिष्ट कैसे कहा जा सकता है? जीवन की विवेक सम्मत परिभाषाओं को भुलाकर, थोड़े समय में अधिक से अधिक धन कमाने की हविश से तो स्वार्थपरता, हृदयहीनता, फैशन, व्यसन ही बढ़ने वाले हैं। उनसे मनुष्योचित जीवन मूल्यों (ह्यूमन राइट्स) का निर्वाह कैसे हो सकता है? साधन सीमित हैं, मनुष्यता या मानवाधिकारों के नाते उनका न्याययुक्त वितरण ही होना चाहिए। यदि प्रबुद्ध लोग उन्हें अपने लिए समेट लेने में ही शान समझेंगे, तो उन्हें शानदार मनुष्य तो क्या, मनुष्य भी कहना न्याय संगत नहीं होगा।

यदि अच्छा कैरियर बनाना है, तो जीवन में मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं, आदर्शों को स्थान देना ही होगा। फिर सादा जीवन-उच्च विचार के सूत्र को ही जीवन में अपनाने एवं तदनुसार जीवन जीने की साधना करनी ही होगी।

उच्च दक्षता - आज जीवन निर्वाह जैसे सामान्य परिणाम के लिए भारी मात्रा में साधन-सुविधाओं की कामना एवं खपत करने की क्षमता को शानदार माना जाता है। लेकिन विज्ञान एवं टैक्रोलॉजी के अनुसार अच्छी मशीन उच्च दक्षता (हाई एफीशिएंसी) वाली, कम इन पुट (कम खपत) में अधिक आउट पुट (अधिक परिणाम) देने वाली होनी चाहिए। भगवान् ने मनुष्य जीवन को उच्च दक्षता (हाई एफीशिएंसी) वाला ही बनाया है। वह नाम मात्र का निर्वाह लेकर भी शानदार लोक हितकारी कार्यों को अंजाम दे सकता है। ऐसी दक्षता वालों को ही देव संस्कृति में संत, ऋषि, साधु-ब्राह्मण कहा जाता रहा है। उन्हें ही सर्वोच्च सम्मान दिया जाता रहा है। जिन्होंने शानदार जीवन जिए हैं, ऐसे ऋषियों से लेकर विवेकानन्द, गाँधी, विनोबा, तमाम शहीदों, सुधारकों ने ऐसा उच्च दक्षता युक्त जीवन ही अपनाया है।

युवाओं को अनुभवियों से आदर्शों की शिक्षा लेकर अपने उत्साह को तद्नुरूप दिशा देने की कला अपने अंदर विकसित करनी ही चाहिए। **जेनरेशन गैप** इसमें कहीं भी बाधक नहीं बनता। वैज्ञानिक, वकील, चिकित्सक, कलाकार, खिलाड़ी आदि वर्गों में पुरानी अनुभवी पीढ़ी के चुने हुए व्यक्ति नई पीढ़ी को विकसित करने, आगे बढ़ाने का कार्य कुशलता पूर्वक कर रहे हैं। जब उन सब में कहीं भी जेनरेशन गैप बाधक नहीं बनता, तो सांस्कृतिक, आदर्शों मानवीय जीवन मूल्यों को सीखने-सिखाने में उसे क्यों बाधक माना जाय? इस भ्रम से उबरा और उबारा जाय तथा नयों की ऊर्जा और पुराने के अनुभव के संयोग से शानदार नई पीढ़ी के विकास की ओर कदम बढ़ाये जायें।



आदर्श युवा बनें

भारतीय ऋषि-मनीषियों ने अनुभवी प्रौढ़ों के साथ युवा शक्ति को सदैव बराबरी का महत्त्व दिया है। तैत्तिरीय उपनिषद् में युवाओं के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। प्रतिष्ठित क्रांतिकारी गाँधीवादी दादा धर्माधिकारी ने युवाओं के लिए युवा कांग्रेस से भिन्न एक संगठन 'राष्ट्रीय युवा संघ' स्थापित किया था। उसके अधिवेशन में उन्होंने युवाओं के लिए उपनिषद् के एक सूत्र की व्याख्या करते हुए युवकों को प्रेरित किया था। सूत्र है :-

युवा स्यात्। साधुयुवा, अध्यायिकः। आशिष्ठो, द्रढिष्ठो, बलिष्ठः।

अर्थ - ऋषि कहते हैं-युवा बनो। प्रश्न उठता है कि युवा कैसे हों? उत्तर है-युवा साधु स्वभाव वाले हों, अध्ययनशील हों, आशावादी हों, दृढ़निश्चय वाले हों और बलिष्ठ हों।

१. साधु का अर्थ यहाँ सज्जन-शालीन है। इसका सामान्य अर्थ होता है, वाणी और व्यवहार में सदाशयता और विनम्रता का होना।

एक मनीषी का वाक्य है-“शालीनता के अभाव में भूल बन जाता है अपराध। शौर्य बन जाता है उद्दण्डता और सत्य बन जाता है बदतमीजी।” हमारी संस्कृति में शील-सदाचार को जीवन का आभूषण कहा गया है। इसलिए ऋषि चाहते हैं कि उत्साह, शौर्य के धनी युवक साधु हों, शालीनता एवं सज्जनता से विभूषित हों।

युगऋषि की एक पुस्तिका है- सभ्यता का शुभारम्भ, उसमें उन्होंने यह तथ्य स्पष्ट किया है कि आजकल साधुता सज्जनता, सभ्यता को केवल बाह्य शिष्टाचार तक ही सीमित कर दिया गया है। इसे शिष्टाचार से आगे सदाचार और संस्कार के स्तर तक ले जाया जाना चाहिए, तभी बात बनेगी।

२. अध्ययनशील - युवक को अध्ययनशील होना चाहिए। युवकों को कुछ नया पाने, नया बनने का उत्साह होता है। ऋग्वेद में ऋषि कहते हैं-अचित्तब्रह्म जुजुषुः युवानः। अर्थात्-युवाओं को अचित्त ब्रह्म चाहिए।

ऐसा ब्रह्म, जिसका चिन्तन पहले हुआ नहीं। युवक को ब्रह्म भी युवा चाहिए। ज्ञान को भी ब्रह्म कहा गया है। ज्ञान का नया स्वरूप जानने हेतु सतत अध्ययनशील होना जरूरी है। इससे युवाओं में गुण-ग्राहकता बढ़ती है।

शालीनता और गुण-ग्राहकता का परस्पर घना सम्बन्ध है। संत तुलसीदास जी ने लिखा है-

‘सिमिट-सिमिट जल भरहिं तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहिं आवा ॥’

अर्थात्-जैसे सब ओर का जल इकट्ठा होकर तालाब में भर जाता है, उसी प्रकार सज्जन-शालीन के पास विभिन्न गुण स्वाभाविक रूप से पहुँच जाते हैं।

शालीन युवाओं में श्रेष्ठ गुणों के विकास से उनकी जवानी जीवंत और धन्य बन जाती है। ऋषि यही चाहते हैं।

३. आशावादी - युवाओं को आशावादी सकारात्मक, विधेयात्मक सोच वाला होना चाहिए। आशावाद आस्तिकता से जुड़ा है। ज्ञान-विज्ञान की तमाम शोधों-खोजों के पीछे मनुष्य की आस्तिक बुद्धि ही रही है। आस्तिक का अर्थ है ‘अस्ति’ पर ईश्वर और प्रकृति के नियमों पर भरोसा। बुद्धि जब यह मानकर चलती है कि जड़-चेतन प्रकृति में हर वस्तु एवं क्रिया के पीछे कोई नियम है। उसे जाना, समझा जा सकता है। इसी आस्तिकता, आशावादी दृष्टिकोण से मनुष्य ज्ञान-विज्ञान के नियमों-सूत्रों को खोजने में सफल हुआ है।

युवाओं में नया जानने की सहज प्रकृति भी होती है तथा उस दिशा में कुछ कर-गुजरने का उत्साह भी होता है। इसीलिए विनोबा जी तथा दादा धर्माधिकारी ‘तारुण्य’ को, जवानी को ऊँचे स्तर की आस्तिकता कहते रहे हैं। अध्ययनशील तरुण यह जानता है कि हर व्यक्ति के अंदर देवत्व विद्यमान है, तो आशावादी आस्तिक तरुण यह आशा करता है कि कैसा भी मनुष्य हो, हम उसके अन्दर देवत्व को जाग्रत् कर लेंगे।

४. दृढ़ निश्चयी - युवक का मन दृढ़ व पक्का होना चाहिए। कच्चे मन वाले परिस्थितियों के थपेड़ों से हवा में पत्रवत् डोलते रहते हैं। समय के प्रवाह में निर्जीव लकड़ों की तरह बहते रहते हैं। पक्के मन वाले जीवन्त

पक्षियों की तरह हवा को चीरकर, मछली की तरह पानी के प्रवाह को चीरकर अपने वाञ्छित लक्ष्य की ओर बढ़ते रहते हैं। क्रांतिकारी सुधारक ऐसी ही मानसिकता वाले हुए हैं।

५. बलिष्ठ - मन के मजबूत युवाओं को तन से बलिष्ठ भी होना चाहिए। यहाँ बलिष्ठ शब्द पहलवानी तक सीमित नहीं है। बलिष्ठ का अर्थ है ऐसा स्वस्थ शरीर, जो परिस्थितियों, प्रकृति के तमाम थपेड़ों को सहज ही सहता हुआ बिना थके लक्ष्य तक बढ़ने में सक्षम हो। युवाओं की काया गमले के उन पौधों जैसी नहीं होनी चाहिए, जिन्हें 'सींचत हूँ कुम्हलाएँ' की श्रेणी में गिना जाय। उन्हें तो 'पर्वत पर हरियाएँ' के स्तर का होना चाहिए। ऋषि चाहते हैं कि युवा का मन-मनीषी जैसा और तन-तपस्वी जैसा हो।

कौन बने तरुण ?

ऋषि कहते हैं-युवा बनो। यह वे किससे व क्यों कहते हैं ? यदि आयु के तहत ही युवा बनते हैं, तब तो सभी को बनना ही है। ऋषि यह आग्रह क्यों करते हैं ?

ऐसी अपील करते समय ऋषि की निगाहों में तरुणाई एक आयु विशेष नहीं, वह एक स्थिति विशेष है। जैसे मनुष्य काया तो सहज मिल जाती है, मनुष्य तन में मनुष्यता का समुचित विकास बिरले ही कर पाते हैं। इसी प्रकार आयु से तो तरुण सभी होते हैं, परन्तु प्रवृत्ति रूप में तरुणाई-जवानी कितनों के अन्दर उभरती दिखती है ? ऋषि चाहते हैं कि हर आयुवर्ग के नर-नारी अपने अन्दर तरुणाई जाग्रत् करें। जैसे सेना में हर आयु के सैनिक को जवान कहा जाता है, वैसे ही समाज को सृजनशील ऊर्जा से भरपूर रखने के लिए हर आयुवर्ग के जवानों की जरूरत पड़ती है। तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार जिनके अंदर उनकी अपील के अनुरूप तेजस्वी प्रवृत्तियाँ हैं, वे सभी युवा हैं-तरुण हैं। महाभारत में भाग ले रहे १२५ वर्ष के भीष्म, १०० वर्ष के ऊपर वाले आचार्य द्रोण, लगभग ८९ वर्ष के श्री कृष्ण तथा उसी आयु के पाण्डव आदि सभी तरुण ही कहे जाने योग्य थे। इसी प्रकार १६

वर्ष का किशोर अभिमन्यु भी तरुणाई में किसी से कम नहीं था। अस्तु, तरुण बनने के लिए ऋषि का आमंत्रण भी विभिन्न आयु वर्ग के लोगों के लिए है।

आचार्य विनोबा भावे जी ने भी 'राष्ट्रीय युवक संघ' के सदस्यों को प्रेरणा देते हुए एक बार कहा था- "मानवता-युग के निर्माण के लिए तरुण-सुलभ और तरुणोचित गुणों को स्वीकार करना होगा। वे गुण हैं- तेजस्विता, तपस्या, और तत्परता। तरुणाई के ये तीन 'त' कार हैं। तेजस्विता का अर्थ है वीरवृत्ति, अर्थात् प्रतिकार निष्ठा। बिना तपस्या के तेज निर्माण नहीं होता। तप दो प्रकार के होते हैं। एक कष्ट सहने का अभ्यास करना और दूसरा है 'तितीक्षा', अर्थात् आपात अवस्था की संभावना के आधार पर उसे सहने की तैयारी। इस तरह दो प्रकार की तपस्या से प्रतिकार निष्ठा जाग्रत् होती है। तेज और तप के साथ तत्परता भी चाहिए। तत्परता का अर्थ है स्वीकृत कार्य के प्रति एकात्म होने की प्रवृत्ति। स्वीकृत कार्य में मग्न होने की और उसके लिए अन्य सभी कामकाज दूर रखने की आदत। जिनकी प्रवृत्ति एकात्म हुई है, उन्हें स्वयं के संसार की सुधि नहीं रहती, वे विषय सुख से परे हो जाते हैं।"

इस संदर्भ में दादा धर्माधिकारी का मत भी ऐसा ही है। उन्होंने कहा है- "यह निष्ठा हर क्रान्तिकारी के चरित्र में मिलेगी। इस स्तर की निष्ठा के सहारे जो आज तक कभी संभव नहीं हुआ, वह भी सम्भव हो सकता है। यह इतिहास की सिखावन है। इतिहास मानवीय प्रयोगों की सफलता का विवरण होता है और उसमें हुई गलतियाँ प्रगति का सोपान सिद्ध हो सकती हैं। अस्तु, युगक्रान्ति में रुचि रखने वाले सभी को अपने अन्दर ऐसी ही निष्ठा पैदा करनी चाहिए।"



युवा पराक्रम की दिशाधारा

युगग्रहण ने शक्तिपीठों की स्थापना शुरू करने के साथ ही (१९८० के दशक में) युग निर्माण परिवार के पुनर्गठन के लिए भी मार्गदर्शन दिया था। इसी क्रम में उन्होंने युवा संगठन की जरूरत बताते हुए उसे 'युग निर्माता संसद' का नाम देते हुए एक आलेख लिखा था। दिशाबद्ध और गतिशील बनाने के लिए शुरू किये गये प्रयास की कड़ी के रूप में 'प्रज्ञा अभियान का दर्शन, स्वरूप और कार्यक्रम' पुस्तक का वह आलेख यहाँ दिया जा रहा है।

उठती उम्र के तकाजे- उठती उम्र अपने साथ सौंदर्य, आशा, उमंग, जोश, उत्साह ही लेकर नहीं आती, मनुष्य के भाग्य व भविष्य का निर्माण भी इन्हीं दिनों होता है। गीली मिट्टी से ही खिलौने बनते हैं। लकड़ी को मोड़ने की स्थिति उसके गीले रहने तक ही बनती है। सूखी मिट्टी, पकी लकड़ी तो जैसी की तैसी ही बनी रहती है। किशोरावस्था और नव यौवन के दिन ही ऐसे हैं, जिनमें व्यक्तित्व उभरता-ढलता भी है। कुसंग से इन्हीं दिनों बर्बादी होती है। सुसंग से व्यक्ति श्रेष्ठ, सुसंस्कारी बनते हैं। लड़के हों या लड़कियाँ, इन दिनों विशेष संरक्षण की अपेक्षा रखते हैं। अनुशासन पालनार्थ उन्हें इन्हीं दिनों विशेष रूप से सहमत करना पड़ता है।

उपेक्षा अभिभावकों की ओर से बरती जाय या किशोर युवकों की ओर से, उसकी परिणति उच्छृंखलता के रूप में ही होती है। यही है व्यक्तित्व को अस्त-व्यस्त करके रख देने वाली और भविष्य को अंधकारमय बनाने वाली विभीषिका, जिसकी ओर से समय रहते सतर्कता न बरती गयी, तो फिर जीवन भर के लिए पश्चात्ताप ही हाथ रह जाता है।

उठती आयु में शालीनता की दिशा में अग्रसर करने के लिए स्कूली शिक्षा तो इसलिए प्रमुख है कि उसके बिना व्यावहारिक ज्ञान और आजीविका उपार्जन का सुयोग ही नहीं बनता। इस अनिवार्यता को शिरोधार्य तो करना

ही चाहिए; पर इतने तक ही सीमित नहीं रह जाना चाहिए। वर्तमान विद्यालयों की शिक्षा के अलावा व्यायाम, स्वावलम्बन, कला कौशल और स्वाध्याय; यह चार प्रयास और भी साथ-साथ चलने चाहिए।

व्यायाम : ब्रह्मचर्य पालन में भी ढील पड़ने से काया खोखली हो जाती है, आत्महीनता घेर लेती है और स्मरण शक्ति जवाब देने लगती है। अचिंत्य-चिंतन और कुसंग से यह छूत की बीमारी लगती है। इससे बचने के सुनिश्चित उपायों में-व्यायाम में, खेलकूद में, ड्रिल-कवायद में रुचि लेनी चाहिए। इससे प्रगतिशील साधियों का सहचरत्व प्राप्त होता है और स्वास्थ्य संपदा का भण्डार समय रहते संचित करने का अवसर मिलता है। व्यायामशाला में, खेल मण्डली से संबंध सूत्र जोड़ना चाहिए। इस प्रयास में लाठी चलाना भी संयुक्त रखने से आत्मविश्वास और शौर्य-साहस बढ़ने का, स्वास्थ्य संरक्षण के अतिरिक्त दुहरा-तिहरा लाभ मिलता है। इस प्रकार के अभियान के साथी तलाश करके एक छोटी-सी मण्डली स्वयं भी बनाई जा सकती है। व्यायाम की ओर जिनका ध्यान पहुँचेगा, वे ब्रह्मचर्य का महत्व समझने और उसकी मर्यादा पालने के लिए कटिबद्ध रहेंगे। जीवन भर काम आने वाली स्वास्थ्य सम्पदा का भण्डार तो जमा कर ही लेंगे।

स्वावलम्बन : एक बात हर युवक को ध्यान में रखनी चाहिये कि अच्छी नौकरियाँ मिलना दिन-दिन कठिन होता जा रहा है। अगले दिनों तो इस आशा के सपने देखने वालों को निराश ही होना पड़ेगा। अतः शिक्षा के साथ स्वावलम्बन की बात भी सोचनी चाहिए। कृषि, पशुपालन, उद्योग आदि की कोई परिवारिक परम्परा हो, तो उस ओर ध्यान देना चाहिए और घर के बड़ों का हाथ बँटाकर धीरे-धीरे प्रवीणता संचित करनी चाहिए। नये उद्योग तभी ढूँढ़ें, जब पुराना उद्योग खर्च निकलने जैसा न हो।

गृह उद्योगों में अनेकों ऐसे हैं जो हर जगह, हर क्षण काम दे सकते हैं। लुहारी, बढ़ई गीरी, दर्जी गीरी का अब मशीनों के आधार पर सर्वाधिक आजीविका वाला स्वरूप भी विकसित हो गया है। स्थानीय प्रचलन को

देखते हुए अन्य छोटे-बड़े उद्योग भी ढूँढ़े जा सकते हैं। यह बात गाँठ बाँध कर रखनी चाहिए कि नौकरी मिलने में अवरोध उत्पन्न होने पर बिना किसी असमंजस के निर्वाह का आधार तुरन्त पकड़ा जा सके, ऐसी पूर्व तैयारी रखनी चाहिए। इसके लिए अध्ययन काल में ही अवकाश के समय ऐसे अभ्यास जारी रखने चाहिए, जो स्वावलम्बन का आधार बन सकें।

स्वाध्याय : स्वास्थ्य, स्वावलम्बन की भाँति भावना, बुद्धि और प्रतिभा की भी जीवन विकास में जरूरत पड़ती है। उदासी, निराशा, जिसे घेरे रहेगी वह थका-माँदा और उदास, उपेक्षित रहकर मौत के दिन पूरे करेगा। इससे बचने का एक उपाय है— स्वाध्यायशील होना और दूसरा उपाय है कला कौशल में रस लेना। सम्पर्क क्षेत्र बढ़ाना, यशस्वी होना और अग्रिम पंक्ति में खड़े होने की प्रवीणता पाना, इन दोनों ही प्रयोजनों को समान महत्व देना चाहिए और उन्हें अपनाने का अवसर नहीं चूकना चाहिए।

प्रज्ञा साहित्य से बढ़कर इन दिनों सरलता पूर्वक उपलब्ध कराने और रुचिपूर्वक हृदयंगम करने योग्य स्वाध्याय सामग्री अन्यत्र मिलना कठिन है। इसे अपने आस-पास से माँग-जाँच कर नियमित पढ़ते रहने का प्रयास करना चाहिए और सफलता पाकर ही चैन लेना चाहिए। यह एक प्रत्यक्ष सच्चाई है कि इस साहित्य से बढ़कर युवावर्ग का सच्चा साथी, सहायक और मार्गदर्शक कदाचित ही और कोई मिल सके। अध्यापकों, अभिभावकों का कर्तव्य है कि वे अपने छात्रों के लिए यह सुविधा किसी न किसी प्रकार उत्पन्न कर ही दें कि वे नियमित रूप से प्रज्ञा साहित्य पढ़ें और चिन्तन में उत्कृष्टता एवं चरित्र में आदर्शवादिता का समावेश करते हुए उज्ज्वल भविष्य का निर्णय करने में सफल हो सकें।

कला कौशल : कला कौशल में भाषण, संभाषण, गायन, वादन के अभ्यास को अधिक महत्व दिया और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस शिक्षा को सुलभ बनाने के लिए अध्यापक, अभिभावक भी प्रयत्नशील रहें और किशोर ऐसा सुयोग स्वयं भी बिठायें, जिससे ऐसी मण्डली में सम्मिलित

होने और मिलजुल कर आगे बढ़ने का सुयोग बैठ सके। प्रतिभा निखारने की दृष्टि से इस स्तर की कुशलता को सर्वथा सराहा जाता है।

गायन-वादन सिखाने वाले संगीत विद्यालय छोटे-बड़े रूप में जहाँ कहीं चलते हैं। न चलते हों तो कुछ साथी ढूँढ़ कर किसी गुरु की सहायता से स्वयं भी कुछ प्रबंध किया जा सकता है। नवसृजन अभियान में इस प्रवीणता की सर्वत्र जरूरत पड़ती है। आये दिन होने वाले समारोहों में युग संगीत की माँग रहती है। उसकी पूर्ति में लोकसेवा का अवसर तो मिलता ही है, अपनी प्रतिभा भी कम नहीं चमकती। सराहना और प्रतिष्ठा से आदमी का हौसला बढ़ता है, प्रतिभा में निखार आता है और व्यक्तित्व उभरता है। स्वयं के अंतराल में विचार और भाव संवेदना के बीजांकुर पनपते हैं। ऐसे लोग रसासिक्त रहते और साधियों को भाव विभोर बनाये रहते हैं। जिन्हें इस उपलब्धि का सुयोग मिले, उन्हें उसे हाथ से जाने नहीं देना चाहिए।

सृजनात्मक कार्यों में भागीदारी

युवा मण्डल सामूहिक श्रमदान से लोकसेवा के अनेक सृजनात्मक कार्य हाथ में ले सकता है और पूरे जोश के साथ उन्हें आगे बढ़ा सकता है।

हरीतिमा संवर्धन : घर-घर में हरीतिमा की स्थापना एक अति सरल, किन्तु महत्त्वपूर्ण कार्य है। आँगन में तुलसी के पौधे लगाने चाहिए। यह प्रकारांतर से खुले देव मन्दिर की स्थापना है। प्रतिमा पूजन का यह बहुत ही उपयुक्त और अनेकानेक लाभों से भरा-पूरा उपासनात्मक धर्मकृत्य है। सूर्य को अर्घ्य चढ़ाने, प्रातः अगरबत्ती, शाम को दीपक जलाने, परिक्रमा करने भर से छोटी पूजा-उपासना बन पड़ती है। वातावरण संशोधन, चिकित्सा उपचार जैसे अनेकानेक लाभ तो प्रत्यक्ष ही हैं। युवा मण्डली तुलसी की पौध उगाकर उनका आग्रहपूर्वक वितरण और थाँवला स्थापन का कार्य देखते-देखते सारे गाँव, नगर में सुविस्तृत कर सकती है।

इसी संदर्भ में शाक वाटिका, पुष्प वाटिका लगाना भी देखने में छोटा, परिणाम में बहुत ही महत्त्व का काम है। आँगनवाड़ी, घरवाड़ी में मौसमी

शाक उगाये जा सकते हैं। चटनी के लिए पोदीना, धनिया, हरी मिर्च, अदरक, प्याज आदि तो गमलों में टोकरियों, पेटियों में ही इतने लग सकते हैं कि कुपोषण की समस्या हल करने वाला, भोजन को स्वादिष्ट बनाने वाला, आर्थिक बचत करने वाला सुयोग हर घर-परिवार को मिलने लगे। हरीतिमा संवर्धन का कितना महत्त्व है, इसे बताना इन पंक्तियों में तो सम्भव नहीं, पर एक शब्द में इतना तो समझा ही जा सकता है कि प्रदूषण निवारण, आँखों की शीतलता, मस्तिष्क की शांति एवं घर की शोभा-सज्जा प्रदान करने जैसे कितने ही लाभ घरों, आँगनों में लगाई जाने वाली शाक वाटिका, पुष्प वाटिका में हर किसी को उपलब्ध हो सकते हैं।

स्वच्छता : गंदगी बढ़ाना और सहना अपने स्वभाव-समाज में घुसा हुआ बहुत बड़ा अभिशाप है। इसे सभ्यता और सुरुचि के लिए प्रस्तुत चुनौती ही समझा जाना चाहिए। श्रमदान से गली-कूचों की, नालियों की, पोखरों की, टूटे-फूटे रास्ते गड्ढों की मरम्मत करने के लिए युवकों की स्वयंसेवा मण्डली चला करें, तो फैलाने और सहने वालों को भी शर्म आएगी और इस मार्गदर्शन से सभ्यता का पहला पाठ-स्वच्छ रहना सीखेंगे।

शिक्षा- अपने देश में ७० प्रतिशत निरक्षर हैं। (यह आँकड़े सन् १९८० के हैं) उनके लिए प्रौढ़ पाठशालाओं का होना आवश्यक है। शिक्षितों के लिए चल पुस्तकालयों द्वारा सत्साहित्य पहुँचाने का प्रबंध होना चाहिए। यह ऐसे रचनात्मक कार्य हैं, जिन्हें हाथ में लेने वालों के सिर पर मुकुट रखे जाने या फोटो छपने जैसी लिप्सा तो नहीं सधती, पर वैसे सेवा में कोई कमी भी नहीं रहती। अपना देश, समाज यदि उठता-बनता है, तो उसके मूल में ऐसी ही सृजनात्मक प्रवृत्तियों का योगदान होगा।

सुधारात्मक पराक्रम : युवकों में शौर्य, साहस और पराक्रम का जोश होता है। उनके एक कोने में योद्धा भी छिपा रहता है, जो अवांछनीयता से जूझने के समय उभरता रहता है। इस पौरुष को सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध लोहा लेने के लिए आमंत्रण देना चाहिए और इन सर्वनाशी दुष्प्रवृत्तियों

के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा करने और उखाड़ फेंकने के लिए कटिबद्ध करना चाहिए। कुरीतियों में छुआछूत, जाति-प्रांति, मृतकभोज, शिक्षा व्यवसाय, भाग्यवाद, टोना-टोटका, बाल विवाह आदि अनेकों को मिटाया जा सकता है। इनके कारण अपने देश-समाज की नैतिक, बौद्धिक और आर्थिक कितनी क्षति हुई है, प्रगति कितनी रुकी है और भ्रांतियों की तमिस्रा किस कदर फैली है, इसका लेखा-जोखा लेने से रोंगटे खड़े होते हैं।

दुष्ट प्रचलनों में सर्वनाशी है-विवाहोन्माद। खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं। दहेज के लेने-देने में कितने घर-परिवार बर्बाद हुए और दर-दर के भिखारी बने हैं, इसका बड़ा मर्मभेदी इतिहास है। बरात की धूमधाम, आतिशबाजी, गाजेबाजे, दावतें, दिखावे, प्रदर्शन में इतना अपव्यय होता है कि एक सामान्य गृहस्थ की आर्थिक कमर ही टूट जाती है। लड़की का माँस बेचने वाले, दहेज के व्यवसायी अपने मन में भले ही प्रसन्न होते और नाक ऊँची देखते हों, पर यदि विवेक से पूछा जाय तो इन अदूरदर्शियों के ऊपर दसों दिशाओं से धिक्कार ही बरसती दिखेगी।

युवकों का कर्तव्य है कि दहेज न लेने, धूमधाम की शादी न स्वीकारने की प्रतिज्ञा का आन्दोलन चलायें और उस व्रत को अभिभावकों की नाराजगी लेकर भी निभायें। भावुक लड़कियाँ भी इस विरोधी संघर्ष में सम्मिलित हो सकती हैं और आजीवन कुमारी रहने का खतरा उठाकर भी इन लड़के, लड़की बेचने वालों के घर जाने से मना कर सकती हैं। ऐसी शादियों में शामिल न होने का असहयोग हर विवेकशील को करना ही चाहिए। युवा पीढ़ी का कर्तव्य है कि वह इन सत्प्रवृत्तियों को अपनाकर अपना तथा समाज का भविष्य उज्ज्वल बनाने हेतु आगे आये।



विवेकपूर्ण पहल

यों तो युग निर्माण आन्दोलन के सर्वमान्य सूत्र काफी प्रचलित हैं—मनुष्य में देवत्व का उदय-धरती पर स्वर्ग का अवतरण। इसके लिए नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रांतियाँ हैं। इस हेतु व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण के चरण हैं। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन के साथ ही सभ्य समाज की अवधारणा है। व्यक्तित्व विकास के लिए साधना, स्वाध्याय, संयम एवं सेवा कार्यों का नियमित अभ्यास आदि है।

किन्तु प्रश्न वहीं आकर टिकता है कि आम युवक-युवतियों के गले इन्हें सीधे उतारा कैसे जाये? युवाओं को तो जोशीले कार्यक्रम अच्छे लगते हैं। अतः शुरू करने के लिए ऐसे सूत्र निर्धारित किए गये हैं, जिनके आधार पर युवाओं को आकर्षित भी किया जा सके तथा उनमें युग निर्माण के मूल उद्देश्यों को जोड़ना संभव हो सके। वे इस प्रकार हैं—

चार तेजस्वी नारे - १. स्वस्थ युवा -सबल राष्ट्र २. शालीन युवा-श्रेष्ठ राष्ट्र ३. स्वावलम्बी युवा-सम्पन्न राष्ट्र तथा ४. सेवाभावी युवा-सुखी राष्ट्र। इन नारों में उत्साह के साथ ऐसा दिशा-बोध भी है, जिसके आधार पर नई पीढ़ी को वांछित व्यक्तित्व-सम्पन्न बनाया जा सकता है। अभीष्ट है कि युवक-युवतियाँ स्वस्थ, शालीन, स्वावलम्बी तथा सेवाभावी बनें तथा अपने विकास को ईश्वरोन्मुख न बना पाएँ, तो राष्ट्रोन्मुख तो बना ही लें। चारों सूत्रों की विभिन्न सम्भावनाओं को यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है।

१. स्वस्थ युवा-कहा जाता है पहला सुख निरोगी काया। काया को धर्म साधना का आधार (शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्) कहा गया है। युग निर्माण के सूत्रों में भी पहला चरण स्वस्थ शरीर है। इसलिए अपने संगठन में युवाओं को स्वास्थ्य साधना से जुड़ने की प्रेरणा दी जाती है। निश्चित रूप से जिस देश के युवा शरीर-मन से स्वस्थ होंगे, वह राष्ट्र सबल-मजबूत राष्ट्र बनकर उभरेगा।

स्वास्थ्य के लिए पहले हलका योग-व्यायाम करने-कराने की प्रेरणा दी जाय। यह प्रत्यक्ष आकर्षक कार्यक्रम बन जायेगा। फिर व्यायाम के क्रम को ड्रिल-कवायद जैसी बनाकर उन्हें अनुशासन में कार्य करने का संस्कार दिया जा सकता है। इसी के साथ आहार-विहार के संयमों को जोड़ने तथा हानिकारक आदतों को छोड़ने का क्रम भी चल पड़ता है। क्रमशः युवकों-युवतियों को सधे हुए स्काउट जैसा संस्कार दिया जा सकता है।

स्वास्थ्य का सीधा और अटूट सम्बन्ध श्रमशीलता से है। आजकल शरीर श्रम को छोटा, ओछा मानने की भ्रान्त धारणा जन मन में घुस पड़ी है। संतुलित श्रम शरीर के लिए स्वाभाविक व्यायाम बन जाता है। विशेषज्ञों के अनुसार श्रम की कमी और उसके असन्तुलन से ही, डायबिटीज, ब्लड कैंसर, स्पाण्डलाइटिस, स्लिप डिस्क, मोटापा, दिल की दुर्बलता जैसे रोग उभरते और पनपते रहते हैं। इसलिए युवाओं में श्रम के प्रति सम्मान का भाव जगाते हुए उन्हें श्रमशील अवश्य बनाना चाहिए।

२. शालीन युवा-युवा पीढ़ी शरीर से स्वस्थ-बलिष्ठ बने यह अच्छा है, किन्तु शरीर से बलिष्ठ तो गुण्डे और आतंकवादी भी होते हैं। इसलिए स्वस्थ होने के साथ उन्हें शालीन बनाने की भी साधना करानी होगी। पूज्य गुरुदेव का प्रसिद्ध वाक्य है- *‘शालीनता बिना मोल मिलती है, किन्तु उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है।’* शालीन व्यक्ति के प्रति समाज में विश्वास और सम्मान का भाव उभरता है। जिसके प्रति यह दो भाव होते हैं, उन्हें स्वाभाविक रूप से हर प्रकार का जन सहयोग मिलने लगता है। इसीलिए शालीनता के द्वारा सब कुछ खरीदे जाने की बात कही गई है।

शालीनता के अन्तर्गत पहले वाणी- व्यवहार की शिष्टता तथा बाद में स्वच्छ मन के सूत्रों का अभ्यास कराया जा सकता है। जिस देश के युवा स्वस्थ और शालीन बनेंगे, वह राष्ट्र, श्रेष्ठ राष्ट्र कहलायेगा। अतः युग निर्माणी नारा है- *युवा बनें सज्जन-शालीन, दें समाज को दिशा नवीन।*

३. स्वाबलम्बी युवा-सच कहा जाय, तो युवाओं को सहज ही

स्वावलम्बी होना चाहिए, बच्चे और बूढ़े परावलम्बी भी रहें, तो क्षम्य है। यहाँ स्वालम्बन को केवल आर्थिक स्वालम्बन तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। वह तो एक श्रेष्ठ प्रवृत्ति है, आर्थिक स्वावलम्बन भी उसका अंग है।

लम्बे समय तक गुलामी झेलने के कारण देखा जाता है कि आज भी युवाओं में स्वावलम्बी प्रवृत्ति की बहुत कमी है। वे अपने बूते अपना भविष्य बनाने के युवोचित पुरुषार्थ के स्थान पर समाज की अनगढ़ धारा में निरीह की तरह बहते देखे जाते हैं।

आत्म गौरव के बोध का उनमें भारी अभाव है। वे अपने अन्दर मनुष्य होने, युवा होने, विश्व की सर्वश्रेष्ठ और सबसे पुरातन संस्कृति के वारिस होने, विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र के नागरिक होने का गौरव कहाँ अनुभव कर पाते हैं? उन्हें अपने अन्दर भरी अद्भुत दिव्य सम्पदा तथा उसके उपयोग का बोध कहाँ है? इसीलिए पश्चिम की अनगढ़ नकल करके जीवन में तमाम समस्याएँ मोल लेते रहते हैं।

विवेक बुद्धि— हमारे लिए क्या उपयोगी और क्या अनुपयोगी है, इसका निर्णय लेने की क्षमता आज कितने युवाओं में है? वे तो अनगढ़ समाज की वाहवाही के आधार पर या प्रचलित ढर्रे के आधार पर अपने लिए मार्ग बनाना चाहते हैं। स्वयं अपना हित न समझ पाते, न साध पाते हैं।

अर्थ व्यवस्था— धन के उपार्जन एवं उपयोग की दिशा में अधिकांश नई पीढ़ी परावलम्बी है। मैनेजमेण्ट के उच्च स्तरीय कोर्स कर लेने पर भी वे नौकरी ही ढूँढ़ना चाहते हैं। अपनी व्यवस्था बुद्धि और मेहनत से बड़ी कम्पनियों को भारी लाभ कराते हैं और उसका एक छोटा अंश ही वेतन के रूप में पाते हैं। पूर्व राष्ट्रपति, देशरत्न डॉ. कलाम साहब कहते रहे हैं कि हमारे युवा नौकरी खोजने वाले नहीं, नौकरी देने वाले होने चाहिए।

विचारकों ने आर्थिक स्वावलम्बन के लिए मनुष्य में उद्यमिता होने पर बल दिया है। सूत्र है— **पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मी** अर्थात् उद्यमी नर श्रेष्ठों को लक्ष्मी की प्राप्ति अवश्य होती है। युगऋषि ने उद्यमी प्रवृत्ति वालों के लिए

संसाधनों एवं तकनीक के साथ ५ प्रवृत्तियों की आवश्यकता बतलाई है। १. श्रम के प्रति गौरव का भाव, २. श्रम करने की सामर्थ्य, ३. श्रम की रचनात्मकता, ४. सहकारिता तथा ५. प्रामाणिकता। यह सूत्र व्यक्ति को अर्थ सम्पन्न बनाने में समर्थ होते हैं।

इसके साथ ही जो धन कमाते हैं, उसे भी विचार पूर्वक खर्च कहाँ कर पाते हैं। अधिकांश धन परम्परागत अनगढ़ प्रदर्शन में खर्च हो जाता है। अर्थात् धन की कमाई और खर्च दोनों ही मामलों में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। यदि यह प्रवृत्ति उभारी जा सके, तो हमारी युवा प्रतिभा सारे विश्व को नया प्रकाश देने में समर्थ है।

इसी प्रकार मनोरंजन में स्वावलम्बी हों, तो मन को खराब करने वाले मनोरंजनों के स्थान पर साहित्य, संगीत, कला परक ऐसे मनोरंजन किए जा सकते हैं, जो मनुष्य की गरिमा भी बढ़ाएँ और सुख भी।

कहने का तात्पर्य यही है कि स्वावलम्बन एक श्रेष्ठ प्रवृत्ति है, जो युवा चेतना के लिए सहज पाने योग्य है। यह सुनिश्चित है कि जहाँ ऐसे स्वावलम्बी युवा होंगे, वह राष्ट्र हर दृष्टि से सम्पन्न बनेगा।

४. सेवाभावी युवा-युवावस्था ऊर्जा का भंडार लेकर आती है। प्रत्येक युवक-युवती में अपनी व्यक्तिगत जरूरतें पूरी करने की तुलना में कई गुनी कार्य क्षमता-ऊर्जा होती है। यदि ऊर्जा को दिशा न दी जाय, तो वह अवांछनीय दिशा में बह जाती है। युवाओं की अतिरिक्त ऊर्जा को यदि राष्ट्रहित, समाजहित जैसे सेवाकार्यों में न लगाया जायेगा, तो वह समस्याएँ पैदा करने में ही लग जायेगी। समस्याएँ पैदा होती हैं, तो उससे न समाज अच्छूता रहता है, न व्यक्ति।

युवाओं को सेवा कार्यों के लिए प्रेरित करना कठिन नहीं होता। उनमें संवेदना जगाई जाय, कार्य का श्रेय उन्हें भी दिया जाय, तो कुछ नया करने का उत्साह तो उनमें होता ही है। अधिकांश युवक किसी न किसी धार्मिक, सामाजिक संगठन से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े होते हैं। उन्हें श्रमपरक

कार्यों को अपने हाथ में प्रसन्नतापूर्वक ले लेना चाहिए। विशेष उत्साही युवागण शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन, व्यसन एवं कुरीति उन्मूलन, पर्यावरण सुधार जैसे आन्दोलनों को भी हाथ में ले सकते हैं। इससे उनके व्यक्तित्व का स्तर भी उन्नत होगा और श्रेय सम्मान भी प्राप्त होगा।

इसलिए हर युवा को जहाँ शालीनता, स्वालम्बन के नाते अपनी ऊर्जा, क्षमता, साधनों को बढ़ाने-बचाने का अभ्यास कराया जाना चाहिए, वहीं अतिरिक्त क्षमता को सेवाकार्यों में लगा देने का संस्कार भी दिया जाना चाहिए। जहाँ ऐसा नहीं होगा, वहाँ की युवा शक्ति नई-नई समस्याएँ पैदा करके समाज एवं राष्ट्र को दुःखी करती रहेगी। जहाँ सेवाभावी युवापीढ़ी होगी, वहीं 'सुख बाँटो, दुःख बाँटाओ' का क्रम चलेगा। राष्ट्र सुखी बनेगा। अस्तु अपने युवा आन्दोलन को इन नारों के अनुरूप विकसित करने-कराने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए।

नौजवानों उठो वक्त यह कह रहा,
खुद को बदलो जमाना बदल जायेगा ॥
शक्तियों को लगाओ सही कार्य में,
देश का विश्व का भाग्य खुल जायेगा ॥



संगठन और उसकी मर्यादाएँ

युवा शक्ति को भटकावों से बचाकर उन्हें सृजनशील बनाने हेतु उन्हें जगह-जगह छोटी-छोटी इकाइयों के रूप में संगठित करना होगा। इस क्षेत्र के युवाओं और उनके हितैषी प्रौढ़ों को प्रयास करने होंगे।

आदर्शनिष्ठ व्यक्तियों को आकर्षित करना, उन्हें प्रेम और अनुशासन के सूत्रों से बाँधकर रखना, आवश्यकता के अनुरूप उन्हें प्रेरणा, प्रोत्साहन, प्रशिक्षण एवं सहयोग देते रहने की व्यवस्था बनाना भी जरूरी है। जिन्होंने अपने भावों, विचारों और कौशल को तदनु रूप बनाया, निखारा, वे ही कुछ उल्लेखनीय करने में सफल हो सके हैं। युवा संगठन और आन्दोलन में लगे युवाओं और प्रौढ़ों को इस दिशा में जागरूक रहना आवश्यक है।

एक बात और ध्यान में रखने की है कि युगत्रयि ने अपने संगठन को संस्थागत नहीं, परिवारगत प्रारूप के अनुसार बनाने-बढ़ाने के निर्देश दिए हैं। 'सृजन शिल्पियों के संगठन की रीति-नीति' नामक पुस्तिका में इस संदर्भ में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उसी को आधार मानकर संगठन का क्रम चलाया जाना उचित है। सामान्यतः से लोग संगठन की विशालता को सफलता का मुख्य प्रमाण मानकर उसकी गुणवत्ता को भूलने लगते हैं। हमारा नारा है—'युग निर्माण कैसे होगा? व्यक्ति के निर्माण से।' इसी तरह निर्माण के तीन चरण (व्यक्ति, परिवार एवं समाज) में पहला चरण व्यक्ति निर्माण है।

युवाओं में जोश खूब होता है। एक बार लहर चल पड़े, तो वे उस दिशा में बड़ी संख्या में साथ चल पड़ते हैं। अतः प्रत्यक्ष कार्यक्रमों में उन्हें लगाना आसान होता है। इसी बिन्दु पर सावधानी बरतना भी जरूरी हो जाता है।

पूज्य गुरुदेव कहते रहे हैं कि युग परिवर्तन की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान उन्हीं का हो सकता है जो पहले स्वयं के चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार में परिवर्तन ला सकते हों। प्रत्यक्ष कार्यक्रम तो हमारे लिए व्यायाम

जैसे माध्यम हैं। जैसे व्यायाम का मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य सुधार-शक्ति संवर्धन है, वैसे युग निर्माणी कार्यक्रमों का उद्देश्य आत्म परिष्कार तथा आत्मशक्ति का जागरण है। युवा पीढ़ी में कार्यक्रमों के प्रति तो आकर्षण होता है, किन्तु आज के विचार प्रदूषण भरे माहौल में आत्म परिष्कार जैसे मूल आधारों की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। जबकि युग निर्माण आन्दोलन के अन्तर्गत युवा संगठन का उद्देश्य मुख्य रूप से यही है कि युवा शक्ति उत्कृष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न और आदर्श, चरित्र निष्ठ युग सृजेताओं के रूप में उभरे और युग परिवर्तन के लिए मजबूत नींव या स्तंभों की भूमिका निभाये।

इसीलिए अपने युवा-संगठन की रीति-नीति प्रचलित ढर्रे से भिन्न रहनी चाहिए। युवाओं की सहज प्रवृत्ति और मिशन की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही युवाओं के लिए कार्य नीति बनाई गई है। इस दिशा में लगे युवा एवं प्रौढ़ परिजनों को अपने उद्देश्य और रीति-नीति को बड़ी सूझ-बूझ तथा तत्परता पूर्वक लागू करना होगा।

संगठन के सन्दर्भ में -

यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि युवा संगठन भी युग निर्माण परिवार के ही अंग हैं। संगोष्ठी की मूल इकाइयाँ प्रज्ञा मण्डल, महिला मण्डल आदि हैं। 'संगठन रीति-नीति' में जिन अनुशासनों मर्यादाओं का उल्लेख है, वे ही युवा मण्डलों एवं युवा सदस्यों पर लागू होती हैं। आन्दोलन समूहों में चूँकि अनेक अन्य संगठनों-संस्थानों के सदस्य भी शामिल होते हैं, इसलिए 'दिया' जैसे आन्दोलनों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अपनी मर्यादाओं की सीमा में रूप दिया जा सकता है।

आचार्य विनोबा भावे जी और दादा धर्माधिकारी के विचार भी युग निर्माण आन्दोलन के अनुरूप ही रहे हैं। इसलिए 'राष्ट्रीय युवक संघ' के सम्बन्ध में उन्होंने जो मर्यादाएँ बनाई-सुझाई हैं, वे भी हम सबके लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकती हैं। युवा संगठन के लिए उन्होंने जो बंधन-पथ्य बताये हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं :-

१. संगठन सत्तानिष्ठ और दण्डनिष्ठ न हो:- संगठन यदि पारिवारिक आधार पर बनाए, चलाए जायें, तो उनमें इन मर्यादाओं का पालन सहज ही हो सकता है।

२. वे व्यक्तिनिष्ठ एवं घटनानिष्ठ भी न हों:- यह बात सही है कि हर संगठन के पीछे किन्हीं श्रेष्ठ व्यक्तियों की छवि और प्रेरणा काम करती है। संगठन को उन श्रेष्ठ व्यक्तियों के आदर्शों के प्रति निष्ठावान् होना चाहिए, न कि व्यक्तियों के। सभी आदर्श व्यक्ति स्वयं भी ऐसा ही चाहते भी रहे हैं। व्यक्तिनिष्ठ संस्थाओं में प्रारम्भ में भले ही तत्काल कुछ बेहतर प्रगति दिखे, किंतु कालांतर में उनमें तमाम अवाञ्छनीय दोष पनपने लगते हैं।

इसी प्रकार हर घटना से अनुभव मिलते हैं। उनके हवाले से प्रगति की समीक्षा की जा सकती है। किन्तु व्यक्ति की तरह हर घटना की भी सीमाएँ होती हैं। इसलिए उन पर जरूरत से ज्यादा बल नहीं देना चाहिए। भारतीय संस्कृति के सनातन होने के पीछे उसमें उक्त दोनों विशेषताओं का सहज समावेश होना भी है। अवतारों, इतिहास पुरुषों से सब प्रेरणा लेते हैं, किंतु किसी एक पर उसका आधार टिका नहीं है। इसी प्रकार रामायण, महाभारत, शंकर दिग्विजय, जैन एवं बुद्ध के आन्दोलन जैसी घटनाओं से प्रेरणा सभी लेते हैं, किन्तु किसी एक को जरूरत से ज्यादा महत्त्व नहीं दिया जाता।

३. विवाद टाले जायें, व्यक्तिगत प्रसिद्धि का आकर्षण न हो, आत्म-समर्थन के प्रयास न किए जायें। हर व्यक्ति के सोचने का, करने का ढंग अलग-अलग होता है। उनमें समन्वय-संतुलन से ही संगठन का स्वरूप निखरता है और शक्ति-सामर्थ्य बढ़ती है। 'सलाह लो-सम्मान दो' की प्रवृत्ति होने से विवाद सहज ही टलते रहते हैं। युगऋषि कहते हैं कि जो व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को महत्त्व देगा, वह संगठन की प्रतिष्ठा को कम करेगा। आत्म-समर्थन के नशे में आदर्शों की उपेक्षा या उन्हें तोड़-मरोड़ कर पेश करने की प्रवृत्ति भड़कती है। इन विसंगतियों से बचे रहने में ही भलाई है।

४. **आचरण को क्रान्ति एवं आचार-व्यवहार का साधन माना जाय :-** इस सूत्र की अनदेखी होने से सिद्धान्तों को रटकर उनका बखान करने वाले 'पर उपदेश कुशल' व्यक्तियों को महत्त्व मिलने लगता है तथा आचार निष्ठा की उपेक्षा से तरह-तरह के भटकाव आने लगते हैं।

५. **सत्ता की राजनीति से दूर रहा जाय :-** सत्ता अथवा पद पाने की प्रवृत्ति ही लोकेषणा कहलाती है। इसी के नाते अहंकार बढ़ते और टकराते रहते हैं। कौरव सेना में यह दोष था, इसलिए महानतम योद्धाओं के एकजुट होने का लाभ उन्हें नहीं मिल सका। पाण्डव सेना इस दोष से मुक्त थी। सेनानायक के पद पर भले ही कोई भी बना रहे, सब अपनी-अपनी विशेषताओं, समय की जरूरतों के अनुसार ही आगे आते या लाये जाते रहे। इसलिए शक्ति एवं संख्या में कम होते हुए भी वे अजेय रहे।

युगन्त्रिषि ने 'लोकसेवियों' के लिए दिशाबोध' पुस्तिका में इन सभी और ऐसी ही अन्य मर्यादाओं का बहुत अच्छा खुलासा किया है। युवा संगठनों को उसका अध्ययन एवं अनुगमन करना चाहिए।

विकास और सावधानियाँ

युवा संगठनों में शामिल युवाओं को इसके लिए प्रेरित-प्रशिक्षित किया जाना है कि वे अपने अंदर दिव्यता के विकास के लिए १. साधना, २. स्वाध्याय, ३. संयम एवं ४. सेवा कार्यों को शामिल करें। नियमों को व्यक्तिगत रूप से रोज चलाएँ तथा उन्हें सप्ताह में एक बार सामूहिक रूप देने का प्रयास करें।

क- ईश्वर उपासना के क्रम में विभिन्न मतावलम्बी युवाओं को उनके विश्वास के अनुरूप ही चलने को प्रेरित किया जाय। वे गायत्री मन्त्र को सार्वभौम मंत्र मानकर उसका प्रयोग करें तो अच्छी बात है, किन्तु मन में

संकोच हो तो उन्हें इसके लिए बाध्य न किया जाय। वे अपनी श्रद्धानुसार मंत्रों, प्रार्थनाओं का प्रयोग करें, किन्तु उन्हें कुछ बातें स्पष्टता से समझा दी जानी चाहिए, जैसे -

उपासना में कुछ कर्मकाण्ड होते जरूर हैं, किन्तु वह उन तक ही सीमित नहीं है। उपासना का अर्थ है- इष्ट के पास बैठना। उसके साथ अभिन्न सम्बन्ध अनुभव करना। कर्मकाण्ड इसमें मदद करते हैं, किन्तु उसमें साधक की भावनाओं, उसके विचारों और संकल्पों की मुख्य भूमिका होती है। किसी भी कर्मकाण्ड एवं मंत्र के साथ भाव यही रहे कि 'हे परमात्मा! हम सबको सद्बुद्धि दे, सबको उज्ज्वल भविष्य के मार्ग पर आगे बढ़ाएँ'।

ख- १. जीवन साधना के अंतर्गत अपने अन्दर बीज रूप में स्थित दिव्य क्षमताओं को जगाना और अन्दर पनपने वाले दोषों-विकारों को निर्मूल करते रहने के प्रयास किए जाते हैं। जो स्वयं को श्रेष्ठता के साँचे में ढालने, अनुशासित बनाने की जितनी साधना करता है, उसे उसी अनुपात में ईश्वरीय अनुदान मिलते हैं।

२. स्वाध्याय : विचारों संकल्पों को सही दिशा और शक्ति मिलती है। इसी आधार पर साधक के प्रयास पुरुषार्थ होते हैं। आदर्शनिष्ठ व्यक्तियों, श्रेष्ठ विचारकों के विचारों का अध्ययन नियमित रूप से किया जाय। जो सूत्र प्रभावित करें, उन्हें जीवन साधना में शामिल किया जाय, तो व्यक्तित्व में चुम्बकीय प्रभाव पैदा होने लगते हैं।

३. संयम : के अंतर्गत अपने अन्दर संभावित शक्तियों के विकास के साथ उन्हें नियन्त्रित और सुनियोजित करने के प्रयास किए जाते हैं। अन्यथा जाग्रत् शक्तियाँ गलत दिशा में लगकर अनर्थ पैदा करने लगती हैं।

४. सेवा : किन्हीं का दुःख बँटा लेने या उन्हें सुख बाँट देने के कार्य सेवा कार्य कहलाते हैं। मनुष्य में सामर्थ्य या तो जागती ही नहीं अथवा जागने पर भी व्यसनों में लगकर समस्याएँ पैदा करने लगती है।

उक्त कार्यों को भली प्रकार करते रहने के लिए दो बातें जरूरी हैं १. समयदान २. अंशदान। आत्म विकास में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को

उक्त नियमों के पालन के लिए प्रतिदिन कम से कम एक घण्टा समय और आधा कप चाय अथवा आधी रोटी की कीमत जितना अंशदान नियमित रूप से निकालना चाहिए।

संगठित युवाओं को क्रमशः युग निर्माण योजना के मुख्य सूत्रों के साथ जोड़ना चाहिए। आदर्श समाज की ओर बढ़ने के लिए व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण में सब की भागीदारी हो। समग्र क्रांति के लिए विचार क्रांति, नैतिक क्रांति के आधार पर ही सामाजिक क्रांति संभव होगी। इसके लिए प्रचारात्मक, रचनात्मक तथा संघर्षात्मक गतिविधियों को अपने-अपने क्षेत्र की आवश्यकता तथा अपनी सामर्थ्य के अनुरूप चलाने के विवेक सम्मत प्रयास किए जाने चाहिए।

सावधान रहें -

युवाओं में जोश बहुत होता है, इसलिए वे किसी दिशा में बहुत तेजी से बढ़ने के लिए उत्साहित रहते हैं। उनकी दिशाधारा बहकने न पाये, इसके लिए विशेष सावधानी एवं जागरूकता बनाये रखना जरूरी होता है। उन्हें कुछ बातों का ध्यान बराबर दिलाते रहना चाहिए।

प्रचार- हमारा मुख्य उद्देश्य युग निर्माण है। निर्माण के लिए अधिक संख्या में व्यक्तियों को खोजने के लिए प्रचारात्मक कार्यक्रम हैं। हर प्रचारात्मक, प्रदर्शनात्मक कार्य का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि कितने नये व्यक्तियों को नवसृजन की धारा से जोड़ा जा सका ?

सृजन के काम में, निर्माण के काम में सबसे बड़ा निर्माण है-सृजनशील व्यक्तियों का निर्माण। सबसे कुशल सृजेताओं को इसी कार्य को प्रधान मानकर चलना चाहिए। अन्य सृजनशील युवाओं को उनकी रुचि एवं क्षमता के अनुरूप विभिन्न रचनात्मक आन्दोलनों में लगा देना चाहिए।

संघर्ष भी हमारा रचनात्मक है। हमारे अंदर जो कमजोरियाँ हैं, जो हमें सृजनशील नहीं बनने देती, उनके साथ संघर्ष जरूरी है। हर युवक में अपने दोष-दुर्गुण को संघर्षपूर्वक दूर करने की बहादुरी तो होनी चाहिये।

इसी प्रकार सृजन के मार्ग में बाधक जो कुरीतियाँ, प्रवृत्तियाँ समाज में फैली हैं, उन्हें समाज से दूर करने लिए भी संघर्षशील होना जरूरी है। नशा, व्यसन, सामाजिक अंध विश्वासों-कुरीतियों को घुन एवं दीमक की तरह समाज को खोखला बनाने वाले शत्रु मानकर उनके साथ संघर्ष के मोर्चे खड़े करने जरूरी हैं। बिना सृजनात्मक उद्देश्यों के मात्र अपनी ताकत और बहादुरी दिखाने के प्रयास समाज के लिए घातक होते हैं। अतः अपने संघर्ष को भी सृजनशील बनाये रखने के साथ सावधानी बरतना जरूरी है।

आन्दोलन समूह

गायत्री परिवार सहित सभी संगठनों को चाहिए कि वे अपने संगठन में सृजनशील युवा संगठन की इकाइयाँ विकसित करें। उनका संचालन अपने-अपने संगठनों के अनुशासन एवं नियमों के अनुसार किया जाना उचित है। समाज में सृजनात्मक या संघर्षात्मक आन्दोलन चलाने के लिए विभिन्न संगठनों या क्षेत्रों के युवा मण्डल एक जुट होकर कार्य करें, तो सफलता का स्तर निश्चित बढ़ेगा। इसके लिए उन्हें परस्पर तालमेल पूर्वक आगे बढ़ने का अभ्यास करना होगा। इसमें व्यक्ति और संगठित इकाइयों की रुचि तथा क्षमता का ध्यान रखते हुए कार्य योजना बनानी होती है।

रुचि व क्षमता के अनुरूप कार्य -

किसी भी आन्दोलन को सफल बनाने के लिए जरूरी है कि कार्य के अनुरूप व्यक्ति तथा व्यक्ति के अनुरूप कार्य की संगति बिठा ली जाय। युवाओं के संदर्भ में भी इसी के अनुरूप कार्ययोजनाएँ बनाई जानी चाहिए।

युवा जैसे होंगे, वैसा ही राष्ट्र और समाज बनेगा। इसलिए युवाओं को स्वस्थ, सुशिक्षित, सुसंस्कारी, स्वावलम्बी, सेवाभावी एवं सहयोगी वृत्ति का होना चाहिए। कहा गया है -

स्वस्थ युवा-सबल राष्ट्र, शिक्षित युवा-प्रगतिशील राष्ट्र, सुसंस्कारी युवा-श्रेष्ठ राष्ट्र, स्वावलम्बी युवा-सम्पन्न राष्ट्र, सेवाभावी युवा-सुखी राष्ट्र, सहयोगी युवा-समर्थ राष्ट्र।

युवा आन्दोलन से जुड़े युवाओं को यह तथ्य समझना चाहिए कि सफल जीवन तभी बनता है, जब उसमें सभी धाराओं का संतुलन हो। ऊँचे कैरियर के नाम पर अधिक से अधिक कमाई के सम्मोहन में युवक-युवतियों का जीवन एकांगी हो जाता है। यदि समाज को, राष्ट्र को, विश्व को उज्ज्वल भविष्य की ओर ले जाना है, तो युवाओं को उक्त सभी प्रवृत्तियाँ अपने अन्दर जाग्रत् करनी ही होंगी।

युवा संगठन सेवा-साधना के क्रम में सातों आंदोलनों (साधना, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन, पर्यावरण, व्यसन एवं कुरीति उन्मूलन तथा नारी जागरण) में से किसी में भी भागीदार बन सकते हैं। चूँकि युवाओं में जोश और श्रम-सामर्थ्य की अधिकता होती है, इसलिए उन्हें जोशीले तथा श्रमपरक दो आन्दोलनों को प्रधानता देनी चाहिए।

१. व्यसन-कुरीतियों से मुक्ति-इस दिशा में अपना नारा है-‘व्यसन से बचाओ-सृजन में लगाओ।’ कहने की जरूरत नहीं कि नशा, व्यसन तथा सामाजिक कुरीतियों में लगने वाले समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन को बचाकर उसका कुछ अंश भी सृजन में लगाया जा सके, तो सृजन के लिए संसाधनों की कमी न पड़े।

२. आदर्श परिवार-आज परिवार टूट रहे हैं। उसका सबसे बड़ा खामियाजा नई पीढ़ी को भुगतना पड़ रहा है। पूज्य गुरुदेव ने कहा है-‘बच्चों का पालन ही नहीं निर्माण भी करें’ पर जहाँ परिवार भाव ही टूट रहा हो, वहाँ निर्माण की जहमत कौन उठाए? अस्तु, युवकों को पारिवारिक सम्बन्धों-आदर्शों के प्रति भी जागरूक बनाया जाना है। परिवार संगठन की शुरुआत विवाह से ही होती है। इसलिए आदर्श विवाह भी इसी आन्दोलन के अंग बनेंगे। इसी आधार पर बेटे-बेटी तथा बेटा-बहू के बीच का भेद मिटेगा और नारी के

प्रति होने वाले अत्याचार समाप्त हो जायेंगे। इसी आधार पर भाव-संवेदनाओं को पोषण मिलेगा तथा तमाम टेंशन-डिप्रेशनों से मुक्ति मिलेगी।

अस्तु, हर क्षेत्र में युवाओं के प्रौढ़ मित्र-बुजुर्ग दोस्त उभरें तथा उक्त सूत्रों के आधार पर सृजनशील युवा संगठन खड़े करें।

कुछ युवा परिजन, युवा मंडल, जी.पी.वाई.जी. (गायत्री परिवार यूथ ग्रुप) तथा दिया (डिवाइन इण्डिया यूथ एसोसिएशन) के बीच भेद और परस्पर सम्बन्धों के बारे में पूछा करते हैं।

इस सन्दर्भ में देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार में हुई युवा प्रतिनिधियों की कार्यशालाओं तथा विभिन्न क्षेत्रीय युवा सम्मेलनों में स्पष्टीकरण दिए जाते रहे हैं। उन निर्धारणों का सार संक्षेप इस प्रकार है-

● प्रज्ञा मण्डल, युग निर्माण परिवार-गायत्री परिवार या प्रज्ञा परिवार के संगठन की रूपरेखा एक ही है। प्रज्ञा मण्डल, महिला मण्डल, युवा मण्डल, संस्कृति मण्डल आदि उसी संगठन के घटक हैं।

● जी.पी.वाई.जी. (गायत्री परिवार यूथ ग्रुप) युवा मण्डलों का ही अंग्रेजी अनुवाद है। कुछ बड़े नगरों में परिस्थितियों के अनुरूप इस नाम का प्रयोग किया गया, जिसमें किसी भेद या विरोधाभास की कल्पना नहीं की जानी चाहिए।

● 'दिया' (DIYA -डिवाइन इण्डिया यूथ एसोसिएशन) युवा प्रज्ञा मण्डलों के माध्यम से चलाया जाने वाला एक युग निर्माणी आन्दोलन है। भारत में युवा शक्ति की जनसंख्या ५४ प्रतिशत से अधिक है। इस युवा शक्ति से सभी को बहुत उम्मीदें हैं, जो कि होनी भी चाहिए। भारत को पुनः दिव्य सांस्कृतिक गौरव दिलाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका निश्चित है। इसके लिए जरूरी है कि युवाओं को जाति, सम्प्रदाय एवं अन्य वर्ग भेदों से परे, अपने अन्दर की दिव्य क्षमताओं को विकसित एवं अनुशासित ढंग से प्रयुक्त करने के लिए तैयार किया जाय।

पश्चिम की एक उक्ति है कि हर व्यक्ति के अन्दर देवत्व बीज रूप में स्थित है। (एब्री इण्डिविजुअल इज़ पोर्टेंशियली डिवाइन।) जब स्वभाव में दिव्यता का विकास होगा, तभी व्यक्ति मनुष्योचित आदर्शों पर चलने-चलाने में समर्थ सिद्ध हो सकेगा। यह विकास केवल कामना करने से संभव नहीं है। उसके लिए तो नियमित साधना चाहिए। भारत देश को तथा विश्व मानवता को दिव्यता का लाभ दिलाना है, तो युवाओं को इस दिशा में पूरे जोशखरोश के साथ अनुशासित ढंग से सक्रिय करना होगा।

बढ़ती संकीर्ण स्वार्थपरता और मानवीय मूल्यों की उपेक्षा ही हमारी दुर्गति का कारण है। लोगों के विचारों में आमूलचूल परिवर्तन कर, प्रत्येक युवा को आत्म परिष्कार व समाज कल्याण के मार्ग पर बढ़ाने के उद्देश्य से देवसंस्कृति विश्वविद्यालय ने युवा आन्दोलन (दिया) की शुरुआत की।

हम जिस भी धर्म, जाति या सम्प्रदाय या संगठन में जुड़ें हों, अपनी ही परिधि में रहकर युग को बदलने के लिए संकल्पित हो जाएँ।

हम सभी मूलतः दिव्य क्षमता सम्पन्न हैं, (We all are potentially divine) इस सूत्र को जीवन्त रूप देने का नाम है दिया।

मनुष्य के पास शक्ति की तीन मुख्य धाराएँ हैं। शारीरिक, आर्थिक व वैचारिक शक्ति। इन शक्तियों पर चेतना शक्ति का नियन्त्रण होना अनिवार्य है। इसके अभाव में शारीरिक शक्ति उद्वण्डता में, आर्थिक शक्ति व्यसन की ओर व बौद्धिक शक्ति विनाश के क्रिया कलापों की ओर भटक जाती है। जाग्रत् शक्तियों के दुरुपयोग को रोककर सदुपयोग के मार्ग पर लाना ही सभी समस्याओं का समाधान है।

समस्त युवाओं को आत्म निर्माण से राष्ट्र निर्माण की राह पर चलाने के प्रयास का नाम ही दिया है। यदि अब भी हमने कोई कदम नहीं उठाया, तो शायद हमारी गिनती समाज को पतन की ओर ले जाने वाली आसुरी शक्तियों के सहयोगियों में की जाने लगे। समय आ गया है कि हम एकजुट होकर आने वाले युग की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर ले लें।

क्या करें, कैसे करें ? : दिया आन्दोलन के द्वारा चलाई जाने वाली गतिविधियाँ को अपनाकर अपने देवत्व के दीपक में ज्योति जाग्रत करें।

ज्योति - Flame-

F - Fitness Programme (फिटनेस प्रोग्राम)

L - Learning Spirit (लर्निंग स्पिरिट)

A - Awareness Drive (एवेयरनेस ड्राइव)

M - Motivational Spirit (मोटिवेशनल स्पिरिट)

E - Entrepreneurial Qualities (इन्ट्रप्रेन्यूरियल क्वालिटीज)

अर्थात्-दिया के सदस्यों में-1. समय स्वास्थ्य कार्यक्रम, 2.अध्ययन की प्रवृत्ति, 3. जागरूकता अभियान तथा 5.उद्यमिता विकास की क्षमता बढ़ाने के गुण होने चाहिए।

इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं को पहल करने के लिए प्रेरित किया गया, जिसके अच्छे परिणाम सामने आये। जैसे **भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा** के प्राथमिक सीमित प्रयोग की सफलता ने परिजनों को उस दिशा में कार्य करने के लिए उत्साहित किया, नैसे ही **दिया** के प्राथमिक प्रयोगों के शुभ प्रभावों ने प्रज्ञा परिवार का प्रेरित किया कि इस अभियान को व्यापक रूप दिया जाय। यह क्रम चल पड़ा है तथा पूरी संभावना है कि यह आन्दोलन भी भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा की तरह विभिन्न प्रतिभाशालियों के सहयोग से देशव्यापी-विश्वव्यापी रूप शीघ्र ले लेगा।



गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) 249411

फोन-01334-260602, 260403 फैक्स-260866

Email- shantikunj@awgp.org; www.awgp.org